Research Reinforcement | A Peer Reviewed International Refereed Journal | ISSN 2348-3857
Impact Factor (IIJIF): 5.454 | Vol. 8, Issue 1 | May. 2020 - October 2020 | pp. 75-81

महात्मा गाँधी के चिन्तन का समाजवादी स्वरूप

Research Reinforcement
ISSN 2348-3857

विनोद कुमार प्रजापत
शोधार्थी, राजनीति विज्ञान विभाग
राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर (राजस्थान)

शोध सारांश

वर्तमान समय में सम्पूर्ण विश्व मानव कल्याण व विकास की राह तथा शांति की तलाश में गाँधीवादी चिन्तन एवं गांधीवादी मूल्यों की ओर अग्रसर है। समग्र विकास के साथ ही प्रगतिशील समाज की अवधारणा को व्यक्ति के सर्वांगिण विकास के लिए अवश्यम्भावी माना जाता है। एक ऐसे समाज की कल्पना की जाती है जिसमें उत्पादन व वितरण सम्बन्ध सुसंगत हो तार्किक हो व न्यायोचित हो। बिना सामाजिक भेदभाव के सभी को न्याय की सुलभ प्राप्ती हो। समाज का तानाबाना समसरता पूर्वक भाईचारे का हो तथा तथा किसी भी प्रकार का शोषण ना हो तथा समाज के अंतिम छोर पर खड़े व्यक्ति का भी विकास हो। हमारी यह तलाश एक हद तक गाँधीय दर्शन में समाहित है। गाँधीय चिन्तन का समाजवादी स्वरूप विशद व व्यापक है जिसको समझने का एक लघु प्रयास इस शोध पत्र में किया गया है। इस समय सम्पूर्ण विश्व में महात्मा गाँधी का 150वाँ जन्म वर्ष के रूप में मना रहा है अत: यह प्रयास और भी सरस व रौचक बन जाता है। आज विश्व पटल पर चहुँओर विचारधारात्मक संघर्ष का दौर है इस प्रगतिशील दौर में गाँधीय दर्शन की अपनी महत्वपूर्ण भूमिका है। आज सम्पूर्ण विश्व के लिए महात्मा गाँधी प्रेरणास्त्रोत है उनके दर्शन के समाजवादी स्वरूप की विवेचना का लघु प्रयास इस शोध पत्र के माध्यम से किया गया है।

संकेताक्षर : *महात्मा गाँधी, समाजवादी चिन्तन, गाँधीय दर्शन, सामाजिक समानता*

प्रस्तावना

आधुनिक भारतीय राजनीतिक चिन्तकों में महात्मा गाँधी समाज-दर्शन के एक ऐसे पैगम्बर माने जाते हैं, जिन्होंने अहिसां, सत्य और नैतिकता पर आश्रित सही समाज की नीव मजबूत की। देव तत्व को मनुष्यत्व के धरातल से मिला देने वाले महामानव गाँधी का जीवनवृत: वस्तुत: बहुत ही अद्भुत है। आधुनिक युग में इंस भारत भूमि में अवतारी पुरूषों की सृष्टि अभी बंद नही हुई है, और महात्मा गाँधी एक अवतारी पुरूष थे। महात्मा की संज्ञा प्राप्त करने में आखिर गाँधी में क्या विशेषताएँ थी, यह प्रश्न उनके व्यक्तित्व से स्वंय सिद्ध हो जाता है। इस राष्ट्रपिता के जीवन का आत्मपक्ष उतना ही पवित्र है, जितना उनका लोकपक्ष मनुष्य होकर देवताओं जैसी वृति की उनमें हमेशा प्रचुरता देखी गयी है। संत के लक्षणों से उनकों रंचमात्र भी दूर नही रखा जा सकता है। खूबी तो यह है कि उनके राजनैतिक जीवन से भी अधिक उनका सामाजिक-जीवन उजागर होता है।[1]

बहुधा प्रश्न उठता है कि गाँधीजी को समाजवादी कहना उचित है और क्या गाँधीवाद और समाजवाद अपने आधार ओर उद्देश्यों में समानता लिए हुए है। इस प्रश्न का उत्तर वस्तुत: इस बात पर निर्भर करता है कि आप समाजवाद का क्या अर्थ लेते हैं। यदि समाजवादी एक वह व्यक्ति है जो सामाजिक समानता, न्याय के आदर्शो और राष्ट्रीय धन के न्यायपूर्ण वितरण का विश्वास करता है, भूमि और पूँजी पर निजी स्वामित्व को प्राकृतिक नियमों के विरुद्ध समझता है, एवं धनिकों द्वारा निर्धनों के प्रत्येक प्रकार के शोषण का अंत करने के लिए सतत् प्रयास करता है तो निश्चय ही महात्मा गाँधी का एक सर्वश्रेष्ठ समाजवादी और उपर्युक्त ध्येयों को लेकर चलने वाले उनके दर्शन को समाजवादी कहा जा सकता है। गाँधीजी सच्चे समाजवादी इसलिए थे कि वे व्यक्ति के हित की अपेक्षा समाज के हित को अधिक महत्व देते थे। यह सत्य है कि वे व्यक्ति के लिए अधिकाधिक स्वतंत्रता चाहते थे, अर्थात राजकीय समाजवाद अथवा साम्यवादी शासन पद्धति के विरुद्ध

थे। किन्तु उससे भी अधिक सत्य यह है कि वे निर्धनता व दरिद्रता को दूर करके प्रत्येक व्यक्ति को सुखी देखना चाहते थे और यह भी चाहते थे कि जिनके पास आवश्यकता से अधिक धन या सामग्री हो वे उनका प्रयोग दूसरों के लिए ही करें। निर्धनों के लिए उनके हृदय में रक्त बहता था और उनके दुखी तथा निराश जीवन में हँसी और आशा की एक किरण लाने के लिए उन्होंने घोर प्रयत्न किये। सम्पति विहीन वर्ग के लिए जिस उत्साह और व्यग्रता के साथ वे आगे बढ़े उसकी उपमा दुर्लभ है।

आर्थिक समानता उनके रचनात्मक कार्यक्रम का एक अंग थी। उनका कहना था कि आर्थिक समानता के ठोस आधार के बिना सारा रचनात्मक कार्यक्रम एक बालू की दीवार होगी। उन्होंने रोटी के श्रम, अस्तेय, उपरिग्रह, ट्रस्टीशिप द्वारा धन के न्यायपूर्ण वितरण में और सबके लिए आर्थिक अवसरों की अधिकतम समानता लाने में योग मिलेगा। तब फिर वास्तविकता यही है कि गाँधी जी अनेकानेक तथाकथित समाजवादियों से कहीं अधिक सच्चे समाजवादी थे, क्योंकि उनका आचरण उनके सिद्धान्तों के अनुरूप था। स्वयं गाँधी जी ने कहा था कि मैं भारत में अपने आप को समाजवादी कहने वालों से कहीं बहुत पहले समाजवादी हूँ। पूँजीवाद का अन्त करने की उनकी उतनी ही अभिलाषा थी जितनी की किसी सबसे बड़े समाजवादी अथवा साम्यवादी की हो सकती है। अपने सभी भाषणों एवं लेखों में वे भारत की जनता की दरिद्रता और बेरोजगारी की चर्चा करते थे और धनिकों से अपनी सत्पत्ति के विशेषाधिकारों का परित्याग करने की अपील करते थे। गाँधी जी ने उग्र समाजवाद की भांति समाज की व्यवस्था का आधार पारस्परिक प्रतियोगिता और मार्ग संघर्ष को नहीं माना अपितु वे समाज के विविध मार्गों के पारस्परिक संयोग की कामना करते थे। वे सामाजिक समानता के प्रवर्तक थे और चाहते थे कि सभी व्यक्तियों और व्यवसायों की प्रतिष्ठा समान होनी चाहिए। उनके समाजवाद में समाज के सदस्य समान हैं, न कोई ऊँचा है और न कोई नीचा। राजकुमार और कृषक, धनी और कृषक, उद्योगी और श्रमिक सभी समान स्तर पर हैं। उनके अतिरिक्त यद्यपि गाँधी जी बड़े उद्योगों के विरोधी थे तथापि वे स्वीकार करते थे कि उनकी पूर्ण समाप्ति सम्भव नहीं इसलिए इनका राष्ट्रीयकरण होना चाहिए। उन्होंने कहा था कि मैं यह कहने के लिए पर्याप्त समाजवादी हूँ कि फैक्ट्रियों का राष्ट्रीयकरण या राज्य नियन्त्रण होना चाहिए।[2]

परन्तु यह सब होते हए भी गाँधी जी के समाजवाद का स्वरूप कार्लमार्क्स के समाजवाद तथा पश्चिम में विकसित हुए किसी अन्य रूपों से, बहुत भिन्न हैं, वरन यह कहना चाहिए कि एक प्रकार से वह अद्वितीय है। समाजवाद गाँधी जी के स्वभाव का एक अंग था, किन्तु उनका प्रेरणा स्रोत उनके सत्य और अहिंसा के सिद्धान्तों के अनुसार अपने जीवन को ढालने के प्रयास का परिणाम था। गाँधी जी एक अहिंसात्मक अथवा नैतिक समाज के प्रवर्तक थे, जिनका नारा यह था कि हमारा समाज अहिंसा पर आधारित होना चाहिए और पूँजी व श्रम और सान्मत व कृषक में सामंजस्य सहयोग होना चाहिए। यह विश्वास करते हुए कि असत्यपूर्ण और हिंसात्मक साधनों द्वारा सत्य पर कभी नहीं पहुँचा जा सकता। गाँधी जी इस परिणाम पर पहुँचे कि केवल अहिंसावादी एवं शुद्ध स्रदय वाले व्यक्ति ही एक सच्चे समाजवादी समाज की स्थापना कर सकते हैं जिसका आधार यह सिद्धान्त होगा कि प्रत्येक के लिए और सब प्रत्येक के लिए। यही कारण था कि उन्होंने वर्गसंघर्ष, वर्ग-घृणा, शक्ति, श्रमजीवी, अधिनायकवाद आदि के विचारो को अपने चिन्तन में लेश मात्र भी स्थान नहीं दिया और समाजवाद के मूल साक्ष्य सामाजिक एवं आर्थिक न्याय तथा समानता की प्राप्ति के लिए केवल सत्य और अहिंसापूर्ण साधनों को ही अपनाया।

गाँधी जी को सच्चा समाजवादी न कहने वाले वे ही व्यक्ति हो सकते हैं जो विशुद्ध मार्क्स अथवा साम्यवाद के पोषक हैं। समाजवाद को वर्ग युद्ध और पूँजी तथा श्रम और शाश्वत विरोध के स्तर पर रखते है, हिंसक क्रान्ति में विश्वास करते है और संघर्ष तथा क्रान्ति के अतिरिक्त अन्य किसी साधन को अपने ध्येय की प्राप्त के लिए सम्भव ही नहीं समझते। ऐसे व्यक्ति गाँधी जी को अधिक से अधिक एक सुधारवादी समझ सकते हैं। किन्तु वे यह भूल जाते है कि गाँधी जी न केवल एक सुधारक थे, वरन् उनसे अधिक क्रान्तिकारी और श्रेष्ठ थे। विश्व के क्रान्तिकारियों में आज तक उनका प्रथम स्थान है। वे हिंसक क्रान्तिकारी न होकर अहिंसक क्रान्तिकारी थे। वे क्रान्ति के द्वारा अस्थायी परिवर्तन न लाकर समाज के ढांचे और जीवन के मूल्यों की आमूल चूल क्रान्ति लाकर क्रान्तिमय और अहिंसात्मक साधनों से एक श्रेष्ठतर और नवीन समाज का निर्माण एवं जीवन के नवीन मूल्यों का प्रतिष्ठान करना चाहते थे। समाजवादी अपनी सफलता के लिए प्राय: उन्हीं साधनों पर निर्भर करता है जिन पर साम्राज्यवाद निर्भर है। किन्तु गाँधीवाद साम्राज्यवाद के हिंसक साधन और आधार को तोड़कर उसके स्थान पर एक बिल्कुल ही नवीन आधार एवं साधन स्थापित करना चाहता है। अत: स्पष्ट रूप से ही समाज व्यवस्था के भाव मूल में वह कहीं अधिक क्रान्तिकारी परिवर्तन करने का अभिलाषी है। समाजवादी के लिए आवश्यक नैतिकता की साख के स्थान पर गाँधीवाद हिंसा और सैनिकता की शक्ति को चुनौती

देकर एक नवीन मानसिक निर्माण के आधार पर उससे कहीं अधिक क्रान्तिकारी और श्रेष्ठतर साख की स्थापना करना चाहता है। रिचर्ड वी. ग्रेग ने गाँधीवाद के विषय में लिखा है हम आज परिवर्तन के मध्य में रह रहे हैं और वह केवल ब्राह्य परिथितियों का परिवर्तन नहीं है, वरन् उसके साथ होने वाले मूल्य एवं प्रतीक अन्तर्व्यवस्था का भी परिवर्तन है। आज विश्व में जो कई महान आन्दोलन हो रहे है, उनमें महात्मा गाँधी द्वारा प्रवर्तित आन्दोलन मूल एवं प्रतीक में सबसे अधिक परिवर्तन कर रहा है और जब वस्तुत: ऐसा परिवर्तन हो जायेगा और बड़े पैमाने पर उसकी प्रतिष्ठा हो जायेगी तो वह सचमुच क्रान्ति होगी। आज गाँधीवाद एवं समाजवाद ये दोनों प्रणालियाँ जिस रूप में हैं, उनके अनुसार तो समाजवाद के लिए गाँधीवाद के प्रधान अंगों को ग्रहण एवं आत्मसात करना उतना सरल नहीं है जितना गाँधीवाद के समाजवाद के कार्यक्रम की प्रधान बातों का चुनाव ग्रहण एवं उपयोग कर लेना आसान है। इस प्रकार इन दोनों व्यवस्थाओं में गाँधीवाद अधिक फैलने वाला एवं व्यापक है और इसलिए अधिक टिकने वाला है।[3]

गाँधीवाद निसन्देश समाजवाद से अधिक व्यापक और विशद् है। जहां गाँधीवाद का लक्ष्य है व्यक्ति का विकास और उसकी मुक्ति तथा समष्टि की पुष्टि दोनों हैं, वहां समाजवाद व्यक्ति की उतनी चिन्ता नहीं करता, उसका दृष्टिकोण केवल समष्टिगत है। दूसरे शब्दों में यह कहना चाहिए कि गाँधीवाद समन्वयात्मक धर्म है, जब कि समाजवाद विभेदात्मक है। गाँधीवाद तो सम्पूर्ण जीवन का तत्व ज्ञान सामने रखता है। गाँधीवाद समाजवाद की अपेक्षा मनुष्य के लिए अधिक स्वाभाविक है क्योंकि वह मनुष्य के सबसे प्रा.तिक एवं तान्त्रिक भाव प्रेम को जागृत करता है। गाँधीवाद में वचन एवं कर्म की एकता है और यह अपने प्रत्येक अनुवादी के शरीर श्रम की आशा करता है। लेकिन समाजवाद मुख्यत: श्रमिकों का पृष्ठ-पोषक होने की घोषणा करके भी अपने अनुवादियों से श्रमिक जीवन के निजी व्यावहारिक अनुभव एवं अनुभव की एकता की अनिवार्य आशा नहीं रख सकता। रिचर्ड वी. ग्रेग ने ठीक ही लिखा है कि यदि समाजवाद मुख्यत: शरीर श्रमिकों का कार्यक्रम है तो उसके अनुयायियों में से प्रत्येक का धर्म है कि कुछ न कुछ शरीर श्रम करें-एक प्रतीक की दृष्टि में और इसलिए भी कि सर्वनिष्ठ अनुभव द्वारा आचरण एवं विश्वास की एकता का विकास हो।

गाँधीवाद एक वह व्यावहारिक दर्शन है जो कार्य एवं वाणी की एकता पर सर्वाधिक बल देता है, वरन् यह कहना चाहिए कि वह सैद्धान्तिक की अपेक्षा व्यावहारिक अथवा आचार प्रधान ही अधिक है। उसके लिए सर्वोत्तम भाषा कार्य की भाषा है। उसके जो कार्यक्रम हैं उन्हीं में वह प्रकट होता है। किन्तु इसके विपरीत समाजवादी को नित्य के आचरण द्वारा समाजवाद के कार्यक्रम में सहायक होने की विल्कुल सुविधा नहीं है। गाँधीवाद अपने अनुयायियों को समाजवादी की अपेक्षा अधिक व्यवहारिक एवं प्रत्यक्ष रचनात्मक तथा मार्ग तथा साधन प्रदान करता है। समाजवाद या साम्यवाद को अपनी सफलता के लिए निर्धनों के कष्ट इस सीमा तक पहुँचा देना चाहता है ताकि उनमें एक भीषण प्रतिक्रिया उत्पन्न हो सके। इसके ओजस्वी कार्यक्रम का अंग है। मनोवैज्ञानिक दृष्टि से देखा जाये तो समाजवाद की नींव कमजोर है और यह मानव जाति का कोई शाश्वत विज्ञान या स्थायी कार्यक्रम नहीं हो सकता, वरन एक विशेष अवस्था में, असह्य दुख एवं कष्ट पैदा होने वाली आन्दोलित मन की चिढ़ एवं प्रतिक्रिया का द्योतक है। समाजवाद की सफलता के लिए समाज में दरिद्रता और शोषण का होना आवश्यक है। गाँधीवाद एक उच्चतर धरातल पर आधारित दर्शन है, जो प्रत्येक समय और प्रत्येक अवस्था में व्यवहार्य है और जिसे जीवन की प्रत्येक दशा में समाज के प्रत्येक कार्यक्षेत्र में प्रयोग में लाया जा सकता है। गाँधीवाद की इस विशिष्टता का कारण यह है कि जहां समाजवाद या साम्यवाद कुल मिलकर केवल आर्थिक दृष्टिकोण को प्रधानता देता है और उसी के आधार पर समाज का निर्माण करना चाहता है वहीं नैतिक और सामाजिक दृष्टिकोण भी अर्थात सम्पूर्ण मानवीय दृष्टिकोण को लेकर चलता है और उन सबके समन्वयात्मक आधार पर समाज का निर्माण करना चाहता है।

गाँधीवाद समाजवाद से इस रूप में भी श्रेष्ठतर एवं व्यापक है कि जहां समाजवाद वर्तमान समाज व्यवस्था के दोषों पर केवल एक रोक का कार्य करता है, वहां बड़े-बड़े यन्त्रकारों का नाश एवं लघु उद्योगो का निर्माण करके गाँधीवाद वर्तमान समाज व्यवस्था के दोषों के स्त्रोत पर आघात करता है। व्यक्तिगत सम्पत्ति की समस्या का हल गाँधीवाद और समाजवाद दोनों चाहते हैं और दोनों ही उसके नियन्त्रण तथा समाजहित में उसके उपयोग के पक्ष में हैं किन्तु गाँधीवाद समस्या के मूल पर आघात करते हुए रोग का निदान करने की अपेक्षा रोग न होने की नीति में अधिक विश्वास करता है। समाजवाद में बड़े-बड़े कल कारखाने पर और उद्योगों पर राज्य के एकाधिकार की जो नीति बताई है उसमें सम्पत्ति चाहे व्यक्तियों के हाथों में न रहे परन्तु सम्पत्ति जन्य दोष तो उसमें भी होते ही हैं। इस प्रकार समाजवाद बुराईयों का स्त्रोत तो खुला छोड़ देता है केवल बुराई बांध देता है। गाँधीवाद पूँजीवाद के मूल में प्रहार करता है और पूँजी के उपयुक्त नियन्त्रण तथा वितरण के लिए अपने अनुयायिओं पर अस्तेय तथा अपरिग्रह जैसे नैतिक बन्धन लगाता है। वे बन्धन केवल नैतिक मूल ही नहीं रखते, इनका आर्थिक एवं सामाजिक मूल्य है। गाँधीवाद की नीति और उसकी

अर्थनीति सब एक दूसरे से सम्बद्ध हैं। गाँधीवाद तो लोगों के मनो को उच्चाशयी बना कर धन-संग्रह करने की प्रवृत्तियों को नियन्त्रित करने को प्रयत्नशील है। सच्चा गाँधीवादी पूँजीपति हो ही नहीं सकता अथवा जितने ही अनिष्टक कोई गाँधीवाद को ग्रहण करेगा, उतना ही उसके स्रदय से अनाचार एवं लूट की भावना नष्ट होती जायेगी। इस प्रकार गाँधीवाद में उन सब कृतियों पर पर्याप्त अंकुश है जिनसे पूँजीवाद का जन्म होता है।[4]

सच्चा समाजवाद तो हमें अपने पूर्वजों से प्राप्त हुआ है। जो हमें यह सिखा गये हैं कि 'सब भूमि गोपाल की है, इसमें कहीं मेरी और तेरी की सीमाएँ नही है। ये सीमाएँ तो आदमियों ने बनायी है और इसलिए ये इन्हें तोड़ भी सकते हैं।' गोपाल यानि भगवान। आधुनिक भाषा में गोपाल यानि राज्य, यानि जनता। आज जमीन जनता की नही है, यह बात सही है। पर इसमें दोष उस सिखावन का नही है। दोष तो हमारा है जिन्होंने उस शिक्षा के अनुसार आचरण नही किया। मुझे इसमें कोई सन्देह नही है कि इस आदर्श को जिस हद तक रूस या कोई और देश पहुँच सकता है, उसी हद तक हम भी पहुँच सकते हैं और वह भी हिंसा का आश्रय लिये बिना। पूँजीवालों से उनकी पूँजी हिंसा पूर्वक छीनी जाय, इसके बजाय यदि चरखा और उसके सारे फलितार्थ स्वीकार कर लिये जाय, तो वही काम हो सकता है। चरखा हिसंक अपहरण की जगह ले सकने वाला अत्यन्त प्रभावकारी साधन है। वह इस बात का प्रतीक है कि जमीन और दूसरी सारी सपंति उसकी है जो उसके लिए काम करे। दुख इस बात है कि किसान और मजदूर या तो इस सरल सत्य को जानते नहीं है या यों कहो कि उन्हें इसे जानने नहीं दिया गया है।[5]

गाँधी मनुष्य और समाज को समग्रता में देखते हैं और हिन्दुस्तान में किसी भी प्रकार के सुधार, परिर्वतन अथवा नियम बनाने के लिए यहाँ की आवश्यकताओं, जनता की भली-बुरी आदतों और रीति-रिवाज का ख्याल रखना आवश्यक मानते हैं। गाँधी समाज के सभी सदस्यों की सहभागिता के आधार पर समाज परिर्वतन की प्रक्रिया चलाना चाहते थे। इसके लिए यह आवश्यक था कि परिवर्तन की प्रक्रिया में ही अहिंसा व प्रेम की शक्ति निहित रहे।[6]

गांधीजी ने हमें अपनी सामाजिक परंपरा की घेरेबंदियों और जंजीरों से भी मुक्त किया। उन्होंने स्त्रियों और पुरुषों, तथाकथित नीची जाति और ऊंची जाति के लोगों तथा देहाती और शहरी जनता की समानता के संबंध में सूत्ररूप से अपनी जो मान्यता दी, उससे सारी की सारी जनता गांधीवादी आंदोलन में प्रविष्ट हो गयी। गांधी भेदरहित आदर्श वर्ण-व्यवस्था की वकालत करते हैं किंतु वर्ण-व्यवस्था के वर्तमान स्वरूप को देखते हुए गांधी सवर्ण और अस्पृश्यों में वैवाहिक संबंध के बारे में कहते हैं कि, 'सवर्ण कन्या हरिजन युवक को स्वीकार करे, यह हरिजन कन्या के सवर्ण से विवाह करने से अधिक अच्छा है। मुझसे बने तो मैं अपने प्रभाव में आने वाली सभी सवर्ण बालाओं को चरित्रवान हरिजन युवकों को पसंद करने को ललचाऊँ। गांधी समाज परिवर्तन के लिए परिवेश को परिवर्तित करना जरूरी मानते हैं। मनुष्य के व्यक्तित्व पर परिवेश का असर पड़ता ही है। इस संबंध में गांधी कहते हैं कि, हम अपने परिवेश और हमारे चारों ओर के अ.श्य वातावरण से कितना ही तटस्थ क्यों न रहना चाहें, उससे प्रभावित हुए बिना नहीं रह सकते। गांधी के अनुसार, मन्दिर और इसी तरह के स्थान केवल कट्टरपंथियों की नहीं, बल्कि सभी हिंदुओं की सम्पत्ति है। सार्वजनिक सुविधाओं से शूद्रों को वंचित करना हिंसा है। इस अधिकार की रक्षा के लिए कानूनी सहायता की मांग करनी होगी लेकिन केवल कानून बेकार होगी। सुधारकों से उनकी अपेक्षा थी कि वे सुधार के प्रति निष्क्रिय सुख को सक्रिय समर्थन में बदलने के लिए जमीन तैयार करें। ऐसा अनुकूल जनमत तैयार होने पर मानसिक हिंसा से भी मुक्ति मिलेगी।

समाजवाद तथा गांधीवाद दोनों सामाजिक क्रांति के समर्थक हैं; केवल सामाजिक सुधार के नहीं, क्योंकि वे दोनों ही सामंतवाद तथा पूँजीवाद की समाप्ति के लिए प्रतिबद्ध हैं तथा वर्गविहीन व जातिविहीन, शोषणरहित, सहकारी या दूसरे शब्दों में समाजवादी समाज की स्थापना का लक्ष्य रखते हैं। दोनों ही वैयक्तिक स्वतंत्रता की रक्षा तथा मानव व्यक्तित्व की गरिमा को सुनिश्चित करना चाहते हैं। गांधी ने अपने सार्वजनिक जीवन के बिलकुल आरंभिक दिनों से ही सामाजिक न्याय के सिद्धांत का समर्थन और अपने विचारों के अनुसार उसे कार्यान्वित करने का प्रयत्न किया था, चाहे वे अपने को भले ही शास्त्रीय दृष्टि से समाजवादी न कहते रहे हों। उनके सर्वोदय का दर्शन अंतिम आदमी के उदय का ही दर्शन था और इसमें शोषितों व शोषकों- दोनों की मुक्ति निहित थी।

गांधीजी यह मानते थे कि समष्टि व्यष्टियों से बना हुआ है। कोई भी प्रणाली समष्टि के लिए हो सकती है, किन्तु उसे यह ध्यान रखना चाहिए कि व्यष्टि ही समष्टि का मौलिक घटक है। समाज की रचना करनेवाले प्रत्येक व्यक्ति के गुण ही सर्वाधिक मूल्य रखते हैं। व्यक्ति की विशिष्ट सत्ता बराबर कायम रहनी चाहिए। समूह में उसका खो जाना कभी भी वांछनीय नहीं है। दुर्घर्ष समूह में व्यक्ति को मिटा देने की प्रवृत्ति बराबर बनी रहती है। गांधीजी ने समूह के इस दबाव से व्यक्ति का उद्धार करने के प्रयत्न से ही सत्याग्रह

जैसे अमूल्य शस्त्र का विकास किया और उसे मानवता के लिए विरासत के रूप में प्रदान किया। सत्याग्रह या सविनय प्रतिरोध के द्वारा कोई भी पीड़ित व्यक्ति निरंकुशता और उत्पीड़न के प्रतिरोध के लिए उठ खड़ा हो सकता है।[7]

गांधी ने भारतीय समाज की वास्तविकताओं को सामने रखते हुए सामाजिक दृष्टि के निर्माण का बीड़ा उठाया था। उनकी कल्पना के सर्वोदय मानव' की तस्वीर उन आकांक्षाओं के आधार पर तैयार की गई थी जो भारतीय परंपरा से घनिष्ठता से जुड़ी हुई थीं। इसके अतिरिक्त, सर्वोदय मानव में गांधी ने एक ऐसे आदर्श का सन्निवेश किया जिससे जीवन के विभिन्न क्षेत्रों से जुड़े व्यक्ति रचनात्मक रीति से अपना तारतम्य जोड़ सकते थे। पिछली दो सदियों के दौरान कोई भी समाज सुधारक समाज के सभी समूहों को अपने में समाविष्ट कर लेने वाली वैसी सामाजिक दृष्टि प्रस्तुत नहीं कर पाया था जैसी दृष्टि गांधी ने सामने रखी।[8]

समाज की जातिवादी व्यवस्था स्वरूप में सामाजिक अधिक्रम निश्चित व कठोर होता है और इन समाजों में पीढ़ी-दर-पीढ़ी संचारित होता है। इसके विपरीत आधुनिक वर्ग व्यवस्था खुली है और उपलब्धि पर आधारित है। गांधी की यह पक्की धारणा है कि किसी एक मनुष्य का दूसरे मनुष्य से श्रेष्ठ होने का दावा करना मनुष्यता को लांछन लगाना है। जब किसी सामाजिक रीति-रिवाज का उद्देश्य समाज को सुरक्षा प्रदान करना हो तब उसका आदर किया जाना चाहिए-भले ही कोई निजी तौर पर उसका पालन करने की जरूरत न महसूस करे। लेकिन जब कोई रीति-रिवाज अत्याचारपूर्ण बन जाए तब भी उसका आदर करना जीवन नहीं, मृत्यु का द्योतक है और ऐसे रीति-रिवाज को तो त्याग ही देना चाहिए। जाति व्यवस्था की चारित्रिक विशिष्टताओं का उल्लेख करते हुए वी.बी. सिंह लिखते हैं कि, सजातीय विवाह, सहभोजिता पर प्रतिबंध, श्रेणीबद्ध ढांचा जिसमें शीर्ष पर ब्राह्मण थे, प्रदूषण की धारणा पर आधारित जाति की दूरी, परंपरागत जाति-व्यवसाय और जाति की अवस्थिति का स्थिरीकरण। ये ही उसके प्रमुख लक्षण थे।

जाति, रंग, नस्ल, धर्म आदि सभी भेदभाव को गांधी अनुचित ठहराते हुए कहते हैं कि, 'सजातीय और विजातीय की भावनाएँ हमारे मन की तरंगें हैं। हम सब एक परिवार ही हैं। गांधी अस्पृश्यता के खात्मे के साथ जातियों का भी अंत चाहते थे। जाति-प्रथा के खात्मे में ही वे सवर्ण-अवर्ण के बीच संघर्ष का स्थायी समाधान देखते थे। उनका नजरिया था कि, 'जब जातियाँ समाप्त हो जाएँगी, तब सभी लोग केवल हिन्दू रह जाएँगे। सामाजिक परम्पराओं को देखने का गांधी का नजरिया बिल्कुल भिन्न था। शिखा रखने में गांधी कोई हानि नहीं देखते और न ही उसे खत्म करने की ही बात करते। हिंदुओं में यह रिवाज़ दीर्घकाल से चला आ रहा है। गांधी कहते हैं कि, उसे तोड़कर सुधारक को तकलीफ नहीं मोल लेनी चाहिए। प्रत्येक रिवाज का सबल कारण न मिले फिर भी अगर वह लोकप्रिय है और उससे नीति भंग न हो तो उसका पालन करना चाहिए। लेकिन जब वकालत की पढ़ाई के लिए विलायत जाने के मार्ग में जाति की रूढ़ मान्यताएँ चट्टान की भांति आकर खड़ी हो गई तो इसकी भी गांधी ने परवाह नहीं की। समुद्र पार जाने को धर्म भ्रष्ट मानने से उन्होंने विनम्रतापूर्वक इनकार कर दिया। जाति पंचायत से उन्हें 'जातिच्युत' करार दिया गया पर उनके भाई ने ऐसे समय में उनका भरपूर साथ दिया था। बैरिस्टरी की पढ़ाई कर वापस भारत लौटने पर भी जाति-बहिष्.त वाला मामला कायम ही था। किंतु अब तक यह दो गुटों में बंट गया था। एक पक्ष ने गांधी को अपना लिया किंतु दूसरे पक्ष ने बहिष्कार जारी रखा। गांधी ने इस मामले को भी अत्यंत ही धैर्य और बुद्धिमानी से हल कर लिया। उन्होंने जाति बहिष्कार की शर्तों को उनसे बगैर नफ़रत किए पालन करना जारी रखा और धीरे-धीरे वह शांत पड़ गया। यहाँ तक कि वे अपने ससुराल और बहन के यहाँ भी पानी तक न पीते थे क्योंकि वे लोग छिपकर ही उन्हें पानी पिलाने के लिए तैयार थे। लेकिन जो काम खुले तौर पर न किया जा सके और इस कारण छिप कर करना पड़े इसके लिए गांधी का मन तैयार नहीं हुआ।

संयुक्त परिवार और जाति-व्यवस्था, दोनों का ही, आर्थिक विकास पर अत्यंत ही नकारात्मक असर पड़ा। इसने व्यक्तिगत पहल-प्रेरणा और लोगों की रुचि, योग्यता व प्रतिभा के मुताबिक कार्य के चयन में अवरोध डाला। संयुक्त परिवार में आवश्यकता से अधिक सामाजिक सुरक्षा और वैयक्तिक पहल को मान्यता के अभाव ने निष्क्रियता को बढ़ावा दिया। महिलाओं, विशेष रूप से उच्च जातियों की महिलाओं, को अपनी योग्यताओं और पहल को विकसित करने का मौका नहीं मिला। उनका जीवन ऊब और नीरसता से भर गया। पैतृक व्यवसायों पर आधारित जाति-व्यवस्था ने नए कौशलों और प्रौद्योगिक नवप्रवर्तनों को प्राप्त करने के लिए कोई अवसर नहीं दिए। कहना न होगा कि इनके बिना आर्थिक प्रगति संभव नहीं थी।

गांधी इतिहास की अवधारणा को बदलते हुए उसे आमलोगों की पहलकदमियों के जरिए नए मुकाम तक पहुँचाना चाहते हैं। रस्किन की पुस्तक 'अंटू दिस लास्ट' से गांधी इतने प्रभावित हुए कि

उसकी भावना के अनुरूप फीनिक्स में उन्होंने एक छोटा सा गांव ही बसा लिया था। यही कारण है कि गांधी को पूर्ण और ठोस सामाजिक क्रांतिकारी बताते हुए विलफ्रेड वेलाक कहते हैं कि, उन्होंने अपने अनुयायियों और समाज से जो मांग की, उसको उन्होंने अपने जीवन में एक बड़ी सीमा तक स्वयं पूरा किया और उनकी मान्यता थी कि पूर्व-पश्चिमी जगत की सभ्यत में से हिंसा को मिटाने का यही एकमात्र साधन है। गांधी की मान्यता थी कि प्रत्येक व्यक्ति अपने घर में उचित परिर्वतन करके हिन्दू समाज की पुनर्रचना कर सकता है। इसलिए गांधी उस कला और साहित्य के पक्षधर हैं जो जनता से जुड़ा हो। प्लेटो या कम्युनिस्टों की भांति सर्वोदय-विचारक नहीं मानते कि परिवार की सारी विशेषताएं संकीर्णता ही निर्माण करती है। व्यक्ति के जन्म से प्रौढ़ता आने तक का महत्वपूर्ण विकास परिवार के भरोसे ही होता है। यह गांधी के विचारों की मौलिकता है।[9]

महिलाओं के बारे में गांधीजी के विचार अत्यन्त ही प्रांसगिक और महत्वपूर्ण है। महात्मा गांधी पुरुषों द्वारा स्त्री के साथ पशुतापूर्ण व्यवहार के लिए संस्कृत के कई श्लोकों तथा तुलसीदास के प्रसिद्ध दोहे को उत्तरदायी मानते हैं। 'ढोल गंवार शूद्र पशु नारी, ये सब ताड़न के अधिकारी।' गांधी सभी संस्कृत के श्लोकों को शास्त्र मानने की भ्रांत धारणा को दूर करना और उसे जड़मूल से उखाड़ फेंकना, जो स्त्रियों को नीचा मानते हैं, जरूरी बताते हैं। गांधी स्त्रियों को देवी मानने से भी इनकार करते हैं और उन्हें पुरुषों के बराबरी का दर्जा देने की बात करते हैं। वे स्त्रियों पर लादे गए पर्दा-प्रथा को अनुचित मानते हैं और इसको खत्म करने के लिए स्त्रियों को आगे आने पर जोर देते हैं। उनकी मान्यता थी कि, 'जिस प्रथा से देश को हानि हो रही हो उस प्रथा का नाश कर देना चाहिए। गांधी भावी स्वराज में स्त्रियों को संपत्ति में पुरुषों की भांति समान हक मिलने की बात करते थे।

भारतीय परंपरा के मुताबिक पत्नी के लिए पति का नाम लेना पाप माना जाता है। गांधी इस संबंध में कहते हैं कि, पति का नाम लेने से पत्नी बिलकुल दूषित नहीं होती। उन्होंने कई महिलाओं से अपने पति को उनके नाम से संबोधित करने हेतु भी प्रेरित किया था। गांधी प्रत्येक स्त्री-पुरुष को इस विश्वास से भर देना चाहते हैं कि उसके अपने आत्मसम्मान और स्वातंत्र्य का रक्षक वह स्वयं है।

गांधी विवाह को पवित्र बंधन मानते हैं और इसे जीवन में एक नवीन व पुनीत उत्तरदायित्व निभाने के अवसर के रूप में देखते हैं। लेकिन वे बाल-विवाह जैसी बुराई को बर्दाश्त करने को तैयार नहीं हैं। गांधी जब मात्र 13 वर्ष के ही थे, उसी समय उनका बाल-विवाह हो गया था। अपने इस अनुभव का स्मरण करते हुए उनमें एक अजीब तरह की अकुलाहट दीखती है। यह बाल विवाह उन्हें कहीं से भी नैतिक नहीं लगता। अपने वैवाहिक जीवन के प्रारंभिक काल में वे पत्नी के प्रति शंकालु और ईर्ष्यालु रहते हैं। उनके आलोचकों ने इसे काफी बढ़ा-चढ़ा कर दीखाने की कोशिश की है। जबकि उस उम्र में उनकी सहज़ ही मान्यता बनी थी कि एक पत्नी-व्रत जिस प्रकार पति पर लागू होता है उसी प्रकार स्त्री यानी पत्नी को भी एक पति-व्रत का पालन करना चाहिए। हालाँकि वे इस 'पालन करना चाहिए' से 'पालन करवाने' की हद तक पहुँच गए थे। इसकी वजह उन्होंने खुद ही बताते हुए कहा है कि, 'मेरी इस वक्रता की जड़ प्रेम में थी। मैं अपनी पत्नी को आदर्श स्त्री बनाना चाहता था। मेरी यह भावना थी कि वह स्वच्छ बने, स्वच्छ रहे, मैं सीखू सो सीखे, मैं पढ़ूं सो पढ़े और हम दोनों एक-दूसरे में ओत-प्रोत रहें।' बावजूद इसके आगे चलकर वे कबूल भी करते हैं कि, 'मेरी भावना एकपक्षी थी। मेरा विषय-सुख एक स्त्री पर ही निर्भर था और मैं उस सुख का प्रतिघोष चाहता था। उनका मानना था कि कर्त्तव्य-परायणता की भावना के कारण ही उन्होंने इस व्याधि से आगे चलकर मुक्ति पायी। दांपत्य जीवन के शुरुआती दिनों में अपने वहमी स्वभाव के चलते पत्नी के साथ किए गए हिंसक बर्ताव के अनुभवों के आधार पर हिन्दू स्त्रियों के परंपरा से चले आ रहे शोषण को गांधी अन्यायपूर्ण मानते हैं। अपने इस व्यवहार के लिए वे खुद को कभी माफ नहीं करते। वे कहते हैं कि, 'ऐसे दु:ख हिन्दू स्त्री ही सहन करती है। क्योंकि 'स्त्री को पति पर शक हो तो वह मन मसोस कर बैठी रहती है, पर अगर पति पत्नी पर शक करे तो पत्नी का तो भाग्य ही फूट जाता है। ऐसी रूढ़िवादी परंपरा स्त्रियों के सामने अन्याय सहन के अलावा कोई विकल्प नहीं छोड़ती। गांधी इसे 'एकतरफा न्याय' करार देते हैं। वस्तुत: यह न्याय पितृसत्ता द्वारा स्त्रियों पर जबरन थोपा गया है। इस संबंध में अंतत: गांधी की समझ बनती है कि, 'पत्नी पति की दासी नहीं, बल्कि उसकी सहचारिणी है, सहधर्मिणी है, दोनों एक दूसरे के सुख-दु:ख के समान साझेदार हैं। इससे गांधी इस निष्कर्ष पर भी पहुँचते हैं कि, 'भला-बुरा करने की जितनी स्वतंत्रता पति को है उतनी ही पत्नी को भी है। इस रूप में वे स्त्री-पुरुष समता की वकालत करते हैं।[10]

निष्कर्ष

आज समाज का ताना-बाना कुछ उलझा हुआ सा प्रतीत होता है, सहिष्णुता-असहिष्णुता की जंग छिड़ी हुई है तथा समाज में

सेक्यूलर-नॉन सेक्यूलर खेमों की बाढ़ सी आ गई है ना जाने मानव सभ्यता किस दौर के विकास की और अग्रसर है। इस संक्रमणशील विकासवादी व्यवस्था की जंग कभी प्रकृति से है तो कभी अपने सामाजिक मूल्यों व सरोकारों से है। आज जिस वैमन्यपूर्ण सामाजिक तनाव के माहौल में जो निरन्तर हिसां व असहिष्णुतापूर्ण बनता जा रहा है। इसके प्रमुख उदाहरण स्वरूप देखा जाये कि CAA जैसे कानून के मसले पर नई दिल्ली में जो तनावपूर्ण प्रदर्शन तथा हिसां व दंगे की स्थिति बनी है। शाहीन बाग का प्रदर्शन हो या करावलनगर, बाबरपुर, चाँदबाग तथा मौजपुर की हिंसा, आज राजनीतिक-व्यवस्था तथा समाज-व्यवस्था व मानवीयता के मूल्यों के समक्ष गम्भीर प्रश्न खड़े करते है। ऐसे में देखा जाये तो आज हमें महात्मा गाँधी के सिद्धान्तों को अपनाने की नितान्त आवश्यकता महसूस होती है। अर्थात सार रूप में हम कह सकते हैं कि महात्मा गांधी के चिन्तन के समाजवादी आधार तत्व आज सार्थक प्रतीत हो रहे हैं।

सन्दर्भ सूची

1. डॉ. प्रसाद, रंगनाथ, गाँधी-दर्शन विश्व शांति की ओर, बिहार हिन्दी ग्रंथ अकादमी, पटना, 2001, पृ.सं. 01
2. डॉ. सिंह, ए.के, भारतीय समाजवादी दर्शन चिंतक, निखिल पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स, आगरा, 2015, पृ.सं. 140-141
3. उपर्युक्त, पृ.सं. 142
4. उपर्युक्त, पृ.सं. 143-144
5. गाँधी, महात्मा, मेरे सपनों का भारत, सर्व सेवा संघ प्रकाशन, राजघाट, वाराणासी, 2004, पृ.सं. 58
6. डॉ. मोदी, नृपेन्द्र प्रसाद, गाँधी-दर्शन सामाजिक संदर्भ, शिल्पायन प्रकाशन, शाहदरा, दिल्ली, 2017, पृ.सं. 87
7. उपर्युक्त, पृ.सं. 88
8. कुमार, रविन्द्र, आधुनिक भारत का सामाजिक इतिहास, ग्रन्थ शिल्पी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2013, पृ.सं. 117
9. डॉ. मोदी, नृपेन्द्र प्रसाद, पूर्वोक्त, पृ.सं. 97-98
10. उपर्युक्त, पृ.सं. 100-101